अर्थव्यवस्था का 'संकट' और राजनीति की उलझन

कमल नयन चौबे

भारत आर्थिक मंदी का सामना कर रहा है। इस तरह की चर्चा की शुरुआत अप्रैल–जून तिमाही में कुल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के आँकड़े आने पर हुई, जो पिछले छह तिमाहियों से लगातार गिरते हुए 5.7 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गयी। सत्तारूढ़ गठबंधन से जुड़े कुछ नेताओं ने इसके लिए विशेष रूप से वित्त मंत्री अरुण जेटली की ग़लत नीतियों को ज़िम्मेदार माना,[1] वहीं सरकार की आलोचना करने वाले कई राजनीतिक दलों और टीकाकारों ने इसके लिए

---

[1] पूर्व वित्त मंत्री और भारतीय जनता पार्टी के मार्गदर्शक मण्डल के सदस्य यशवंत सिन्हा ने 27 सितम्बर, 2017 को द *इण्डियन एक्सप्रेस* में 'आई नीड टू स्पीक अप नाउ' शीर्षक से एक लेख लिखा. इसमें उन्होंने देश की मौजूदा आर्थिक स्थिति को ख़तरनाक बताया. उन्होंने

विमुद्रीकरण या नोटबंदी और गुड्स ऐंड सर्विसेज़ ऐक्ट (जीएसटी) जैसे क़दमों पर इसकी तोहमत मढ़ी। दूसरी तरफ़, सरकार-समर्थक टीकाकारों और आर्थिक विशेषज्ञों ने दावा किया कि सरकार ने अर्थव्यवस्था में आमूल संरचनात्मक बदलाव करने के लिए कई दूरगामी क़दम उठाए हैं, जिनका सुखद परिणाम आगे चल कर सामने आएगा। ऐसा लगता है कि इस बहस के प्रति अनुक्रिया करते हुए प्रधानमंत्री ने अर्थव्यवस्था की स्थिति को प्रभावी ढंग से नियंत्रित और संचालित करने के मक़सद से ही 25 दिसम्बर को नीति आयोग के सदस्य विवेक देबरॉय की अध्यक्षता में पाँच सदस्यीय आर्थिक सलाहकार परिषद का पुनर्गठन किया, यद्यपि नयी सरकार ने सत्तारूढ़ होते ही पिछली कांग्रेस सरकार द्वारा आर्थिक सलाहकार परिषद रखने की व्यवस्था को एक तरह से ख़त्म कर दिया था। यह पुनर्गठन संकेत करता है कि सरकार को भी अर्थव्यवस्था में सब कुछ ठीक-ठाक न चलने का एहसास है।[2]

असल में, अप्रैल-जून की तिमाही में मुद्रास्फीति के प्रभावों को हटाने के बाद जीडीपी केवल 5.7 प्रतिशत रहा, जो कि अपेक्षा से काफ़ी कम है। पिछली छह तिमाहियों से वृद्धि-दर में लगातार गिरावट हो रही है। मार्च, 2016 की तिमाही में यह दर 9.2 प्रतिशत थी, बाद की तिमाहियों में यह क्रमशः 7.9, 7.5, 7.0, 6.1 और जून की तिमाही के अंत में 5.7 रह गया है। यह लगातार गिरावट इसलिए भी चिंता का विषय है, क्योंकि मैक्रो या समष्टिगत कसौटियों पर अर्थव्यवस्था की स्थिति अनुकूल है। मुद्रास्फीति कम रहते हुए हाल ही में घट कर 1.5 प्रतिशत तक पहुँच गयी; व्यापार और वित्त घाटा— दोनों ही नियंत्रण में रहे हैं, इसलिए निवेश योग्य संसाधनों या विदेशी मुद्रा का दोहन करने की नौबत नहीं आयी है। यहाँ तक कि पिछले डेढ़ सालों में ब्याज दरों में भी लगातार कटौती की गयी है। वित्त बाज़ार (स्टॉक और बॉण्ड) और प्रत्यक्ष निवेश— दोनों में ही डॉलर का आगमन अपने उच्च स्तर पर है। यहाँ तक कि तेल की क़ीमत भी स्थिर और तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर पर है। अंत में, मानसून भी सामान्य रहा है। लेकिन, अनुकूल मैक्रो कारकों के बावजूद सरकार इन्हें उच्च वृद्धि-दर में बदलने में नाकाम रही है। दरअसल, समस्या सरकारी आँकड़ों से कहीं ज़्यादा बड़ी है। 5.7 प्रतिशत की तिमाही आर्थिक वृद्धि-दर का अनुमान भी मुख्य रूप से अर्थव्यवस्था के कॉरपोरेट क्षेत्र और अन्य संगठित क्षेत्रों से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित है। इसमें अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र के आँकड़ों को सम्मिलित नहीं किया गया है। इस क्षेत्र का ग़ैर-खेतिहर घटक जीडीपी में 31 प्रतिशत योगदान देता है। यह क्षेत्र जीएसटी और विमुद्रीकरण से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। यदि अर्थव्यवस्था का एक-तिहाई हिस्सा गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ है, तो तार्किक दृष्टि से वृद्धि-दर 5.7 प्रतिशत से भी कम होनी चाहिए।[3]

इस आलेख का मक़सद इस प्रश्न पर विचार करना है कि तथाकथित वर्तमान 'आर्थिक संकट' का स्वरूप क्या है? क्या वर्तमान स्थिति के लिए नरेन्द्र मोदी सरकार की नीतियाँ और कुछ जल्दबाज़ी में लिए गये फ़ैसले ज़िम्मेदार हैं या फिर इन्हें किसी ऐसी परिघटना का हिस्सा माना जाना चाहिए जिसकी बुनियाद पहले ही रखी जा चुकी थी? क्या सचमुच वर्तमान संरचनात्मक सुधारों (नोटबंदी

लिखा कि अर्थव्यवस्था लगातार नीचे की ओर जा रही है, और भाजपा में बहुत सारे लोग यह बात जानते हुए भी भयवश कुछ कहना नहीं चाहते. उनके अनुसार, 2015 में सरकार ने जीडीपी की गणना-पद्धति में परिवर्तन कर दिया था, जिसके चलते पहले की तुलना में अब वार्षिक वृद्धि-दर की गणना में 200 आधार बिंदु ज़्यादा जुड़ जाते हैं. इसलिए, गणना की पुरानी पद्धति के अनुसार वृद्धि-दर 5.7 प्रतिशत होने के बजाय 3.7 प्रतिशत या उससे भी कम ही है. देखें, सिन्हा (2017).

[2] प्रधानमंत्री द्वारा गठित आर्थिक सलाहकार परिषद में विवेक देबरॉय के अलावा चार अन्य सदस्यों को नियुक्त किया गया. इनके नाम इस प्रकार हैं : रतन वताल (पूर्व वित्त सचिव और नीति आयोग के सदस्य); सुरजीत भल्ला (अर्थशास्त्री); रथिन रॉय (निर्देशक, नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक फाइनेंस); अशिमा गोयल (प्रोफ़ेसर, इंदिरा गाँधी इंस्टीट्यूट ऑफ़ डिवलपमेंट रिसर्च). इस परिषद ने 11 अक्तूबर की अपनी बैठक में यह स्वीकार किया कि अर्थव्यवस्था में मंदी आयी है, किंतु इसने इसके कारणों के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा. देखें, 'पीएम्ज़ इकॉनॉमिक एडवाइज़री कौंसिल एकनॉलेजेज़ स्लोडाउन', *द हिंदू*, 12 अक्तूबर, 2017 : 1.

[3] अरुण कुमार (2017क).

और जीएसटी) से सकारात्मक दूरगामी आर्थिक प्रभावों की अपेक्षा की जा सकती है ? क्या आर्थिक स्थिति, विशेष रूप से जीडीपी की वृद्धि-दर में कमी जैसी परिघटना सरकार के लिए चुनावी मोर्चे पर नुक़सानदेह साबित हो सकती है ?

I
अर्थव्यवस्था का संकट और दीर्घकालिक आर्थिक परिप्रेक्ष्य

मोदी सरकार के विरोधियों द्वारा अक्सर अर्थव्यवस्था की तत्कालीन स्थिति के लिए इस सरकार की नीतियों को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। इस संदर्भ में विशेष रूप से नोटबंदी और जीएसटी जैसे फ़ैसलों का उल्लेख किया जाता है। हालाँकि सरकार के प्रवक्ता यह कहते हैं कि नोटबंदी इस मंदी के लिए ज़िम्मेदार नहीं है। वरिष्ठ अर्थशास्त्री दीपक नैयर भी मानते हैं कि उनकी बात सही है। यह मंदी काफ़ी पहले आरम्भ हो चुकी थी। नोटबंदी ने सिर्फ़ आग में घी डालने का काम किया है। नोटबंदी ज़्यादा से ज़्यादा पिछली दो तिमाहियों में आर्थिक वृद्धि-दर कम होने की व्याख्या करती है। इस प्रकार के क़दमों ने समस्या को काफ़ी मुखर तो कर दिया है किंतु मंदी के लिए मूलतः ये ज़िम्मेदार नहीं हैं। दरअसल वृद्धि के लिए संरचनात्मक कठिनाइयों का मुक़ाम कहीं और है, और उनका वजूद छह तिमाहियों के बजाय छह वर्षों से जारी है।[4]

जीडीपी वृद्धि-दर में आयी इस कमी को एक दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है। 2003-04 से 2007-08 के दौर में भारत में जीडीपी वृद्धि की गति सबसे नियमित रही। जीडीपी में प्रति वर्ष 8.8 प्रतिशत की दर से वृद्धि होती रही। इसके लिए विश्व-अर्थव्यवस्था की सकारात्मक स्थिति भी ज़िम्मेदार थी। इसके बाद मंदी का दौर आया जिसके कारण 2008-09 में वृद्धि-दर में 3.9 प्रतिशत की गिरावट आयी। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से 2009-10 और 2010-11 के बीच वृद्धि-दर बढ़ कर 9.5 प्रतिशत हो गयी। इस सुधार के लिए काउंटर साइक्लिकल मैक्रोइकॉनॉमिक नीतियाँ (राजकोषीय उपायों के ज़रिये अर्थव्यवस्था में आये अति-उछाल या मंदी का मुक़ाबला करके स्थिरता

---

[4] दीपक नैयर (2017).

लाने के प्रयास), घरेलू बाज़ार के आकार के साथ-साथ अन्य स्थानों की तुलना में वित्तीय क्षेत्र के ज़्यादा नियंत्रित होने जैसे कारक ज़िम्मेदार थे। लेकिन अर्थव्यवस्था की यह अच्छी स्थिति लम्बे समय तक क़ायम नहीं रह सकी। 2011-12 से 2013-14 के बीच जीडीपी वृद्धि-दर गिर कर 5.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गयी, क्योंकि इस दौरान वित्तीय असंतुलन में वृद्धि हुई, मुद्रास्फीति बढ़ी और बैलेंस ऑफ़ पेमेंट (भुगतान अधिशेष) में चालू खाते के घाटे के तहत भी बढ़ोतरी हुई।[5]

सिंहावलोकन करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार को एक कठिन आर्थिक स्थिति मिली थी, जो संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) के आख़िरी तीन वर्षों की विरासत थी। दरअसल, इन समस्याओं को सुलझाने के लिए सबसे ज़्यादा एक अच्छी क़िस्मत की ज़रूरत थी। पिछले तीन वर्षों में विश्व की तेल क़ीमतों में तेज़ी से गिरावट आयी। यह 110 डॉलर प्रति बैरेल से गिरकर 50 डॉलर प्रति बैरेल तक आ गया। इसने चालू खाते के घाटे को कम किया, मुद्रास्फीति को नियंत्रित किया और वित्तीय घाटे को कम करने में मदद की। 2014-15 से 2016-17 के बीच जीडीपी वृद्धि-दर का औसत स्तर 7.5 प्रति वर्ष रहा। लेकिन इस ज़रिये हुए अर्थव्यवस्था के पुन:उभार को ज़्यादा सकारात्मक मानने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इसने वृद्धि-दर में रुकावट डालने वाली संरचनागत सीमाओं को छिपा लिया। इसका एक अर्थ यह भी था कि अर्थव्यवस्था को अधिक तेज़ रफ़्तार से वृद्धि के सतत पथ पर लाने का अवसर खो दिया गया है। फ़ायदे की स्थिति में कार्रवाई करना ज़्यादा आसान और अच्छा होता। इसीलिए अब समस्याएँ फिर से उभर कर आ गयी हैं और अब उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। खेती एक लम्बे समय से संकट का सामना कर रही है। पिछले 25 वर्षों से खेती का प्रति व्यक्ति जीडीपी ग़ैर-खेतिहर क्षेत्र के प्रति व्यक्ति जीडीपी का दसवाँ हिस्सा रहा है। इसमें बहुत कम नये रोज़गारों का सृजन हुआ है। इसके कारण ग्रामीण क्षेत्र संकट का सामना कर रहा है। जीडीपी में विनिर्माण (मैन्युफ़ैक्चरिंग) की हिस्सेदारी और इसमें पैदा होने वाला रोज़गार 25 वर्ष पहले की तुलना में कम है। विश्व अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन और निर्मित वस्तुओं के निर्यात में भारत की हिस्सेदारी में लगातार गिरावट आयी है।

यह समझना आवश्यक है कि क्यों निवेश और निर्यात आर्थिक वृद्धि के महत्त्वपूर्ण निर्धारक हैं। पहला, माँग पक्ष से वृद्धि के तीन स्रोत उपभोग, निवेश और निर्यात हैं। हालाँकि निजी क्षेत्र या सरकारी क्षेत्र में उपभोग उनके अपने आय-स्तर पर निर्भर करता है। इस तरह निवेश (जिसके बारे में अर्थव्यवस्था के भीतर फ़ैसला होता है) और निर्यात (जो हमारी वस्तुओं की वैश्विक माँग पर निर्भर करता है) दोनों ही निर्गत (आउटपुट) में वृद्धि लाने वाले माँग के प्राथमिक और स्वायत्त स्रोत हैं। दूसरा, आपूर्ति पक्ष से भी निवेश और निर्यात वृद्धि के महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व प्राप्त होते हैं। उनसे निवेश क्षमता बनती और उत्पादकता बढ़ती है— ये दोनों ही आपूर्ति पक्ष के निर्गत (आउटपुट) को बढ़ाते हैं। निर्यात को निश्चित रूप से मूल्य और गुणवत्ता के आधार पर विश्व बाज़ार की प्रतियोगिता के अनुरूप होना चाहिए। यह निर्यात करने वाली फ़र्म की कुशलता और उत्पादकता को बढ़ाता है और इससे निर्गत (आउटपुट) में वृद्धि होती है।

समष्टिगत अर्थशास्त्र के सदंर्भ में देखें तो वृद्धि में धीमेपन के लिए अंतर्निहित कारक— निवेश और निर्यात— पिछले छह वर्षों से अपरिवर्तित हैं। जीडीपी के अनुपात के रूप में निवेश (कुल निश्चित पूँजी-निर्माण) 2011-12 में 31.8 प्रतिशत था और 2013-14 में यह गिरकर 28.3 प्रतिशत, 2014-15 में 30.4 प्रतिशत और 2016-17 में 27.1 प्रतिशत हो गया। इस तरह, निवेश जीडीपी अनुपात में संप्रग सरकार के आख़िरी तीन वर्षों में 3.5 प्रतिशत की गिरावट आयी, और राजग के पहले तीन वर्षों में 3.5 प्रतिशत की। जीडीपी के अनुपात के रूप में व्यापार का अनुपात 2011-12 और 2013-14 के

[5] वही.

दौरान 16-17 प्रतिशत किंतु 2014-15 में यह गिरकर 15.2 प्रतिशत हो गया, 2016-17 में 12.2 प्रतिशत हो गया (तक़रीबन तीस प्रतिशत की गिरावट)। व्यापार निर्यात में अमेरिकी डॉलर का मूल्य संप्रग शासन के आख़िरी तीन वर्षों में स्थिर रहा और एनडीए के पहले तीन वर्षों में इसमें गिरावट आयी।[6]

ज़ाहिरा तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान मंदी की स्थिति एक दीर्घकालिक प्रक्रिया का नतीजा है, और इसमें विशेष रूप से संप्रग सरकार के आख़िरी तीन वर्षों के शासनकाल में हुए धीमे आर्थिक परिवर्तनों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। साथ ही मोदी सरकार यह दावा नहीं कर सकती है कि उसने संप्रग सरकार से मिली आर्थिक स्थिति में कोई आमूलचूल सकारात्मक परिवर्तन किया है। किंतु क्या यह कहना सही होगा कि मोदी सरकार ने कई मामलों में अर्थव्यवस्था को बद से बदतर हालत में पहुँचा दिया, या फिर यह कहा जा सकता है कि उसने कुछ ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन के कार्यक्रम अपनाए हैं जिनका लाभ आने वाले वर्षों में दिखेगा? इस संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण आर्थिक संकेतकों और आयामों के संदर्भ में मोदी सरकार के प्रदर्शन पर विचार करना आवश्यक है।

II
मोदी सरकार का आर्थिक मोर्चे पर प्रदर्शन

सरकार के समर्थक टीकाकार आर्थिक मोर्चे पर सरकार की उपलब्धियों पर बल देते रहे हैं। इनके मुताबिक़ एफ़डीआई (प्रत्यक्ष विदेशी निवेश) में वृद्धि हुई है। जहाँ 2014 के वित्त वर्ष में एफ़डीआई 36 अरब डॉलर था, वहीं वित्त वर्ष 2017 में यह 60 अरब डॉलर हो गया। इस संदर्भ में ये टीकाकार जनधन-आधार-मोबाइल (जेवीएम) का भी उल्लेख करते हैं, जिससे पिछले तीन वर्षों लगातार ज़रूरतमंद तक फ़ायदा पहुँचने से 1.75 लाख करोड़ का रिसाव कम हुआ है। जेवीएम ने बहुत से नक़ली लाभार्थियों और बिचौलियों को रास्ते से हटाया है। सरकार समर्थकों को यह भी उम्मीद है कि भारत में 2018 तक सभी गाँवों का विद्युतीकरण हो जाएगा। जहाँ 2014 में 18,452 गाँवों का विद्युतीकरण होना शेष था, वहीं 2017 में अब ऐसे गाँवों की संख्या सिर्फ़ 4,991 ही बची है। जहाँ 2014 में 69 किमी प्रति दिन की दर से सड़कों का निर्माण हो रहा था, वहीं अब प्रति दिन 133 किमी की दर से सड़कें बन रही हैं। जहाँ 2004-14 के बीच 13.8 करोड़ नये घर बनाने की अनुमति दी गयी, वहीं राजग सरकार ने सिर्फ़ तीन सालों में 17.7 करोड़ घरों को मंज़ूरी दी है।[7] सरकार के समर्थक जीडीपी गिरावट के लिए तकनीकी कारकों को ज़िम्मेदार मानते हैं और उनका मानना है कि कुल-मिलाकर देश की आर्थिक स्थिति पहले की तुलना में कहीं ज़्यादा अच्छी है।

किंतु जीडीपी दर में गिरावट के अतिरिक्त ऐसे कई संकेतक हैं जिनसे अंदाज़ा मिलता है कि अर्थव्यवस्था की हालत सही नहीं है। मई, 2014 में जब इस सरकार ने कमान सँभाली थी तो अंतर्राष्ट्रीय कच्चे तेलों की क़ीमत में तेज़ी से गिरावट आयी। इससे मुद्रास्फीति में कमी लाने में मदद मिली, जो कि 2014 के आम चुनावों के समय एक बहुत ही बड़ा मुद्दा था। सरकार ने ज़ोर-शोर से इस बात का श्रेय लिया। उस समय से तेल की क़ीमतें कम ही रही हैं, और सरकार ने पेट्रोलियम पदार्थों पर कर बढ़ाकर इस दौर में काफ़ी राजस्व कमाया है। अब भारत में आने वाले कच्चे तेल की क़ीमत में थोड़ी बहुत बढ़ोतरी हुई है, किंतु इस बात की सम्भावना नहीं है कि यह पहले की स्थिति में पहुँच जाएगी। इसके अतिरिक्त, तुलनात्मक रूप से अच्छे मानसून के कारण खेती का उत्पादन भी अच्छा रहा है।

---

[6] वही.

[7] जयंत सिन्हा (2017).

ग्रामीण–शहरी के संयुक्त फूड ऐंड बेवरेज इण्डेक्स का उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) 2014–15 में 6.5 प्रतिशत, 2016–17 में 5.1 प्रतिशत था, लेकिन इसके बावजूद विशेष रूप से जुलाई 2016 और जनवरी 2017 में क़ीमतों में वृद्धि हुई (मसलन, मई–जून 2015 में दालों की क़ीमत)। यानी इन अनुकूल स्थितियों के आधार पर अर्थव्यवस्था को सार्थक दिशा नहीं दी जा सकी।[8]

जीडीपी में गिरावट के पहलुओं की चर्चा तो लेख की शुरुआत में ही हो चुकी है। इसी के साथ 2014–15 में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईआईपी) 5 प्रतिशत था, और 2015–16 में यह 3.3 प्रतिशत हो गया। 2016–17 में इसमें थोड़ा सा सुधार हुआ और यह बढ़ कर 4.6 प्रतिशत हो गया। निवेश में वृद्धि हुई है किंतु इसे बहुत उल्लेखनीय या शानदार नहीं माना जा सकता है क्योंकि फ़िक्स्ड कैपिटल फ़ॉरमेशन (स्थिर पूँजी संरचना या एफ़सीएफ़) में 2007–09 के दौरान हुई वृद्धि से भी कम वृद्धि हो रही है, जबकि वे वैश्विक वित्तीय मंदी के बाद के वर्ष थे। घरेलू बचत में लगातार गिरावट हो रही है, जिसमें घर क्षेत्र (हाउसहोल्ड सेक्टर) की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 2005–06 में कुल घरेलू बचत में इसका हिस्सा 70 प्रतिशत था (या जीडीपी का 23.5 प्रतिशत), किंतु 2015–16 में यह घटकर 60 प्रतिशत रह गया, (जीडीपी का 19.2 प्रतिशत), जो कुल घरेलू बचत और जीडीपी के अनुपात— दोनों ही मामलों में वर्ष 2007–08 से भी कम है।[9]

बाज़ार में माँग की स्थिति निवेश के लिए अनुकूल नहीं है। 2014–15 की चौथी तिमाही से लेकर 2015–16 की चौथी तिमाही तक निर्यात में लगातार कमी आयी है। एक रपट के मुताबिक़ वर्तमान जीडीपी में निर्यात का हिस्सा पिछले 14 वर्षों में सबसे कम है। घरेलू माँग में भी कमी आयी है। रोज़गार से संबंधित आँकड़े भी निराशाजनक आर्थिक स्थिति की पुष्टि करते हैं। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के मध्य में उच्च वृद्धि–दर वाले वर्षों में खेतिहर रोज़गार में कमी और स्त्रियों के श्रम शक्ति से अलग होने की की भरपाई करने के लिए ग़ैर–खेतिहर क्षेत्र में पर्याप्त रोज़गार का सृजन नहीं किया गया। नेशनल सेम्पल सर्वे कार्यालय के अनुसार, वर्ष 2004–05 और 2011–12 के बीच विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र में प्रति वर्ष कुल–मिलाकर एक प्रतिशत से भी कम नये रोज़गार का सृजन हुआ। निर्माण, सूचना तकनीक और बिजनेस आउटसोर्सिंग जैसे क्षेत्रों में पहले लोगों को रोज़गार मिलता था, लेकिन पिछले तीन वर्षों में इनका प्रदर्शन काफ़ी ख़राब रहा है। निर्माण क्षेत्र में रोज़गार जड़ हो गया है।

इन चिंताजनक मैक्रोइकॉनॉमिक संकेतकों के बावजूद केंद्र सरकार का कुल ख़र्च जो वर्ष 2009–10 में जीडीपी का 15.8 प्रतिशत था, वह 2013–14 में घट कर 13.9 प्रतिशत रह गया, और वर्ष 2017–18 में इसके 12.7 प्रतिशत रहने का अनुमान है। अपर्याप्त सार्वजनिक ख़र्च और रोज़गार–निर्माण के बग़ैर माँग स्थितियों को सुधारने के लिए कुछ ख़ास नहीं किया जा सकता है। सरकार ने इसके बदले विमुद्रीकरण को लागू किया, जिसने अर्थव्यवस्था के सबसे कमज़ोर तबक़े के लोगों की स्थिति को और भी ज़्यादा ख़राब बना दिया। सरकार बैंकों पर हावी नॉन परफ़ॉर्मिंग ऐसेट्स (एनपीए) की समस्या का समाधान करने में नाक़ाम रही है। जहाँ मार्च 2014 में कुल नॉन परफ़ॉर्मिंग एडवांसेस, कुल दिये गये कर्ज़ का चार प्रतिशत था, वहीं इस वर्ष वह 9.5 प्रतिशत हो गया। सरकार द्वारा घोषित प्रधानमंत्री सहज बिजली हर घर योजना (सौभाग्य) पिछले एक दशक में ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए घोषित कार्यक्रमों की निरंतरता है। दरअसल, यह सार्वजनिक ख़र्च बढ़ाने का प्रयास है, जो राजकोषीय ख़र्च बढ़ाने के ज़रिये वृद्धि–दर बढ़ाने की तत्परता के बारे में वित्त मंत्री के वक्तव्य देने के कुछ दिनों बाद आया है (हालाँकि बाद में अरुण जेटली ने इस वक्तव्य का खण्डन कर दिया)।

---

[8] *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली* (2017).

[9] वही.

जीएसटी को लागू करने की प्रक्रिया ने कई तरह की समस्याएँ पैदा की हैं। आरम्भिक स्तर पर इसे जिस तरह लागू किया गया उससे कई वस्तुएँ पहले से ज़्यादा महँगी हो गयीं। छोटे व्यापारियों के लिए इससे जुड़े प्रक्रियात्मक पहलू अत्यंत कठिन साबित हुए। इन सबके चलते देश के कई छोटे-बड़े व्यापारिक क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधियों में धीमापन आया।

योजना आयोग के स्थान पर निटि आयोग की स्थापना की गयी, इस तरह सार्वजनिक ख़र्च की एक सुस्थापित परम्परा को ख़त्म कर दिया गया। अक्सर निटि आयोग की अनुशंसाएँ सार्वजनिक जाँच-पड़ताल के लिए खुली नहीं होती है। यद्यपि सरकार ने नीटि आयोग को एक बड़े संस्थात्मक सुधार के रूप में प्रस्तुत किया था, किंतु अभी तक इसकी कोई सुव्यवस्थित सकारात्मक भूमिका सामने नहीं आ पाई है।

आँकड़ों को नजदीक से देखने से यह पता चलता है कि निर्माण वृद्धि-दर 1.2 प्रतिशत है, जो कि पिछले पाँच वर्षों में अब तक का न्यूनतम है। यह हमारे द्वारा नयी अध्ययन-पद्धति को अपनाए जाने के बाद सबसे कम है (यह अध्ययन-पद्धति ग्रॉस वैल्यू ऐडेड पर आधारित है)। वृद्धि-दर के नीचे की ओर जाने के पीछे जुलाई में गुड्स ऐंड सर्विसेज टैक्स (जीएसटी) के लागू होने के पहले निर्माण की गतिविधियों का कम होना भी ज़िम्मेदार था। लेकिन इसके साथ ही यह व्यावसायिक बैंकों के क्रेडिट (उधार) में कमी आने से भी ऐसा हुआ। अप्रैल से अगस्त के बीच बैंक के क्रेडिट में 1.8 प्रतिशत की कमी आयी, अर्थात् इसमें नकारात्मक विकास हुआ। यह पिछले 13 वर्षों में सबसे कम है। यदि हम घर और अन्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं हेतु लिए गये लोन को निकाल दें, तो दरअसल उद्योग को क्रेडिट या उधार में कमी आयी है। भारतीय स्टेट बैंक के रिपोर्ट के मुताबिक़ मार्च में ख़त्म होने वाले वर्ष में क्रेडिट-वृद्धि 63 वर्षों में सबसे कम रही है।[10]

यद्यपि भारतीय जनता पार्टी ने अपने चुनावी घोषणा-पत्र में बेरोज़गारी को एक प्रमुख मुद्दा बनाया था और बड़े पैमाने पर नये रोज़गार सृजन का वायदा किया था।[11] लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि

[10] अजीत रानाडे (2017).

[11] भारतीय जनता पार्टी (2014).

वास्तविक धरातल पर बहुत कम नयी नौकरियों का सृजन हो रहा है। कई क्षेत्रों में लोगों को छँटनी तक का सामना करना पड़ा है। *द इण्डियन एक्सप्रेस* में 4 अक्तूबर, 2017 को प्रकाशित रिपोर्ट में यह बताया गया कि कपड़ा से लेकर पूँजी वस्तुओं तक, बैंकिंग से आईटी तक, स्टार्ट-अप से ऊर्जा तक अर्थव्यवस्था नीचे की ओर जा रही है, और अर्थव्यवस्था के पुराने और नये दोनों ही क्षेत्रों में नौकरियाँ ख़त्म हो रही हैं। रोज़गार के बारे में ठोस आँकड़ों के अभाव होने के कारण *द इण्डियन एक्सप्रेस* द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के आँकड़े एकत्रित किये गये, इससे यह पता चलता है कि बाज़ार में रोज़गार में कमी आ रही है, और नये अवसर बहुत ही सीमित हैं। इस संदर्भ में निम्नलिखित बिंदु विचारणीय हैं :

* रपटों में मुताबिक़ पूरे देश में कपड़ा क्षेत्र में पिछले तीन वित्तीय वर्षों में 67 इकाइयाँ बंद हुई हैं, जिससे 17,600 मज़दूरों पर प्रभाव पड़ा है। यह आँकड़ा केंद्रीय कपड़ा मंत्रालय के आधिकारिक आँकड़ों से लिया गया, जिसमें संगठित क्षेत्र के कपास और मनुष्य निर्मित फ़ाइबर कपड़ा मिलों पर ही ध्यान केंद्रित किया गया है। इसमें छोटे स्तर के कपड़ा उद्योगों को सम्मिलित नहीं किया गया है, जहाँ ज़्यादा बड़ी संख्या में श्रमिकों को अपने रोज़गार से हाथ धोना पड़ा है। यह भी ग़ौरतलब है कि 2015-16 में 27 इकाइयों के बंद होने से 7,938 मज़दूर प्रभावित हुए थे और 2014-15 में 21 इकाइयों के बंद होने से कुल 5, 384 मज़दूर प्रभावित हुए थे।

* पूँजी वस्तुओं का निर्माण करने वाली बड़ी कम्पनी लारसन ऐंड ट्युबरों (एल ऐंड टी) ने 31 मार्च 2017 को ख़त्म हुए वित्तीय वर्ष पहली दो तिमाहियों के दौरान तक़रीबन 14,000 कर्मचारियों को काम से निकाल दिया गया है। कम्पनी ने अपने इस निर्णय को रणनीतिक निर्णय की संज्ञा दी।

* इस देश की पाँच बड़ी आईटी कम्पनियों में से तीन में जून की तिमाही तक कुल मिला कर 878,913 लोग काम करते थे। इन तीन कम्पनियों ने अपने यहाँ से तक़रीबन 1800 लोगों को काम से निकाल दिया। टीसीएच में से 1,414 लोगों को काम छोड़ना पड़ा, इंफ़ोसिस लिमिटेड में 1, 811 और टेक महिंद्रा लिमिटेड से 1,713 लोगों को काम से निकाल दिया गया। स्थिति और भी बुरी हो सकती थी किंतु विपरो लिमिटेड और एचसीएल टेक्नोलॉजीज लिमिटेड ने अपने यहाँ से लोगों को काम से निकाला नहीं बल्कि नये लोगों को काम पर रखा।

* जनवरी-मार्च 2017 के दौरान एचडीएफ़सी बैंक ने कुल 6,096 कर्मचारियों को काम से निकाला, जहाँ पहले इसमें कुल 90,421 लोग काम करते थे, वहीं अब कर्मचारियों की संख्या घटकर 84,325 रह गयी। अक्तूबर-दिसम्बर 2016 की तिमाही में कर्मचारियों की संख्या में कुल 4,581 की कमी आयी थी। निजी क्षेत्र के अन्य बैंकों द्वारा भी कर्मचारियों की संख्या में कमी आने की ख़बरें हैं।

* नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में भी रोज़गार में कटौती हुई है। सुजलॉन एनर्जी लिमिटेड और रेजेन पॉवरटेक ने भी पिछले छह महीनों में 1500 कर्मचारियों को काम से बाहर निकाला है।

* 2016 में कुल 212 स्टार्ट-अप्स दुकानें बंद हो गयीं, जो कि पिछले साल से 50 प्रतिशत ज़्यादा है।

कपड़ा और परिधान क्षेत्र में उत्पादन के कुल 40 प्रतिशत का निर्यात होता है, वहाँ बहुत से अलग-अलग बाहरी कारणों के संयोजन और घरेलू माँग में कमी आने के कारण मंदी आयी है। इसके अलावा, इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का अभाव (लैक ऑफ़ इकॉनॉमीज ऑफ़ स्केल), मज़दूरों की परेशानियाँ और बिजली सहित अन्य मामलों में ख़र्च बढ़ना शामिल है। सरकार ने वायदे के मुताबिक़ सुधार नहीं किये हैं, और राजनीतिक फ़ायदे के लिए नोटबंदी जैसे क़दम का सहारा लिया है, जो अर्थव्यवस्था के लिए घातक साबित हुआ है। वह सार्वजनिक निवेश बढ़ाने और एनपीए (नॉन परफ़ॉर्मिंग ऐसेट्स) की समस्या को सुलझाने में नाक़ाम रही है।[12] स्पष्टत: रोज़गार, निर्माण या निवेश के मामले

[12] एनपीए या नॉन परफ़ॉर्मिंग ऐसेट्स की समस्या का तात्पर्य बैंकों की ऐसी समस्या से है जब कोई व्यक्ति बैंक से क़र्ज़ लेकर उसके ब्याज या मूल राशि या दोनों को ही अदा नहीं करता. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कुल नॉन परफ़ॉर्मिंग ऐसेट्स 2013 में 3.6 प्रतिशत थे, लेकिन

में राजग सरकार का प्रदर्शन अपने चुनावी वायदे के अनुरूप नहीं रहा है। हालाँकि सरकार ने दो बड़े संरचनात्मक बदलाव के कार्यक्रमों को अपनी प्रमुख उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया। ये दो कार्यक्रम नोटबंदी और जीएसटी हैं। ये दोनों ही ऐसे क़दम हैं जिनके बारे में अलग-अलग ध्रुवीकृत विचार सामने आते हैं। जहाँ सरकार के प्रवक्ता और इसके समर्थक इन दोनों ही क़दमों को ऐतिहासिक और दूरगामी बदलाव करने वाला मानते हैं, वहीं सरकार के आलोचक इन्हें अर्थव्यवस्था पर बहुत बड़ा हमला क़रार देते हैं। आख़िर इन दोनों वृहद निर्णयों को किस रूप में देखा जाना चाहिए? आलेख के अगले भाग में इन दोनों बड़े संरचनात्मक फ़ैसलों के बारे में विविध विचारों की समीक्षा की गयी है।

III

नोटबंदी और जीएसटी : संरचनात्मक सुधार या आर्थिक संकट का आधार

नोटबंदी और गुड्स ऐंड सर्विसेज़ टैक्स (जीएसटी)— मोदी सरकार के दो ऐसे क़दम हैं, जिन्हें सरकार जहाँ अपने सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक संरचनात्मक सुधारों के रूप में प्रस्तुत कर रही है, वहीं सरकार के विरोधी इन्हें अर्थव्यवस्था को चोट पहुँचाने वाले दो अपरिपक्व क़दमों के रूप में रेखांकित करते रहे हैं। यह अपने आप में रोचक है कि 8 नवम्बर, 2017 को विमुद्रीकरण के एक वर्ष पूरा होने पर जहाँ सत्ता पक्ष ने 'काला धन विरोधी दिवस' मनाया, वहीं विपक्ष ने इस दिन को 'काला दिवस' घोषित करके पूरे देश में विरोध प्रदर्शनों का आयोजन किया। आलेख के इस भाग में यह परीक्षण करने का प्रयास किया गया है कि क्या नोटबंदी और जीएसटी को भारतीय अर्थव्यवस्था के मौजूदा संकट के लिए ज़िम्मेदार माना जा सकता है? या फिर, ये दोनों ही ऐसे फ़ैसले हैं जिनसे भले ही आरम्भ में थोड़ी बहुत परेशानी हो रही हो, लेकिन आख़िरकार इन बड़े संरचनात्मक बदलावों से अर्थव्यवस्था को लाभ ही होगा? आलेख का यह भाग दो उपभागों में बँटा हुआ है— पहले उपभाग में नोटबंदी के अर्थव्यवस्था पर प्रभावों का परीक्षण किया गया है, और दूसरे उपभाग में जीएसटी, उसके लागू होने की प्रक्रिया और आर्थिक गतिविधियों पर इसके प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

1. नोटबंदी : भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ संघर्ष या 'भयंकर भूल'?

प्रधानमंत्री ने 8 नवम्बर 2016 को राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में 500 और 1000 के नोट को वापस लेने और उनके स्थान पर 500 और 2000 के नये नोट को बाज़ार में लाने की घोषणा की। उन्होंने इस क़दम को काले धन के ख़िलाफ़ एक सशक्त संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। बाद के दिनों में इसके लक्ष्यों को लेकर कई अलग-अलग तरह की बातें कही जाती रहीं, मसलन यह आतंकवादियों को नग़दी से रहित करने की दिशा में सकारात्मक क़दम है, या फिर इसे नग़दरहित अर्थव्यवस्था (कैशलेस इकॉनॉमी) को बढ़ावा देने वाला फ़ैसला घोषित किया गया।

यह आँकड़ा 2016 में बढ़ कर 9.6 प्रतिशत हो गया. 2017 में मोदी सरकार ने रिज़र्व बैंक को एनपीए खातों के ख़िलाफ़ इनसॉलवेंसी प्रोसिडिंग्ज़ चलाने का अधिकार दिया और ऐसे कुछ खातों के ख़िलाफ़ कार्रवाई भी की गयी. देखें, सुबीर रॉय (2017); इनसॉलवेंसी ऐंड बैंकरप्ट्सी कोड (आईबीसी) के तहत 12 बड़े खाताधारकों के ख़िलाफ़ कार्रवाई शुरू हुई जो कुल नॉन परफ़ॉर्मिंग ऐसेट्स के 50 प्रतिशत अर्थात् 8 लाख करोड़ रुपये के लिए ज़िम्मेदार हैं. किंतु इस दिशा में कोई ख़ास प्रगति नहीं हो पाई. व्यवस्था को गति प्रदान करने के उद्देश्य से केंद्र सरकार ने 24 अक्तूबर, 2017 को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को 2,11,000 करोड़ रुपये की पूँजी उपलब्ध कराने की घोषणा की. लेकिन मोदी सरकार की नाकामी कुछ बातों से स्पष्ट होती है. एनपीए के अंतर्गत कुल 15 लाख करोड़ रुपये की राशि का घपला है. ऑल इण्डिया बैंक इंप्लॉईज़ ऐसोसिएशन हमेशा ही ऐसे डिफ़ॉल्टर्स (या ब्याज और मूल राशि जमा न करने वालों) के नाम के प्रकाशन की माँग करती रही है. लेकिन संप्रग की तरह ही राजग सरकार के वित्त मंत्री ने भी इस माँग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया. इसके बजाय, बैंकों ने पिछले तीन वर्षों में इस प्रकार के 1,88,287 करोड़ रुपये को माफ़ किया है. स्पष्टत: सार्वजनिक बैंक के क्षेत्रों के लिए अलग से बड़ी राशि मुहैया करना अर्थव्यवस्था को गति देने के सरकार के प्रयासों का एक भाग है. लेकिन सरकार द्वारा इसके लिए आवश्यक अन्य क़दम नहीं उठाये गये हैं. देखें, 'विल बैंक रिकैपिटलाइज़ेशन फ़िक्स एनपीएज़?,' द *हिंदू*, 10 नवम्बर, 2010 : 10.

इसमें संदेह नहीं है कि इस फ़ैसले ने आम लोगों के सामने बहुत कठिन समस्या पैदा कर दी और नोटबंदी के कई महीनों बाद तक उन्हें नग़दी के लिए तरसना पड़ा। इसका असर असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के रोज़गार पर भी पड़ा। हालाँकि इस बारे किसी व्यवस्थित अध्ययन का अभाव है कि इससे असंगठित क्षेत्र की अर्थव्यवस्था किस सीमा तक प्रभावित हुई।[13] लेकिन कई टीकाकारों ने नोटबंदी विमुद्रीकरण के फ़ैसले को एक ऐतिहासिक क़दम बताते हुए इससे होने वाले फ़ायदों को भी स्पष्ट किया। मसलन, एस. गुरुमूर्ति ने प्रधानमंत्री मोदी के इस क़दम को 'वित्तीय पोखरण' की संज्ञा दी है। इनका मानना है कि 1990 के दशक के उदारीकरण की तरह ही यह अर्थव्यवस्था में बुनियादी सुधार लाने वाला फ़ैसला है।[14] इस संदर्भ में कुछ प्रमुख तर्क इस प्रकार दिये गये : पहला, इस बात पर बल दिया है कि नोटबंदी से ग़रीबों को बड़े पैमाने पर कष्ट होने के बावजूद उन्होंने बड़ी संख्या में मोदी को वोट दिया और भारतीय जनता पार्टी को कई चुनावों में जीत मिली। इसे कार्यक्रम को आम जनता द्वारा स्वीकार किये जाने का प्रमाण माना है।[15] दूसरा, नोटबंदी के समर्थकों का मानना है कि कर चोरी करने वालों के लिए नोटबंदी एक आपदा की तरह था। नोटबंदी की प्रभावकारिता के बारे में निष्कर्ष निकालने के लिए कर राजस्व में वृद्धि पर ध्यान देने की आवश्यकता है।[16] एस. गुरुमूर्ति के मुताबिक़ टैक्स देने वालों की संख्या में 56 लाख की वृद्धि हुई है। पहले से टैक्स प्राप्ति में 42 प्रतिशत और स्व-मूल्यांकन टैक्स में 34 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। स्पष्टत: विमुद्रीकरण के समर्थक यह मानते हैं कि इसके लागू होने के बाद आय कर के दायरे में आने वाले लोगों की संख्या बढ़ी है। तीसरा, समर्थकों के मुताबिक़, काले धन के संदर्भ में भी नोटबंदी को विफल नहीं माना जा सकता है। तक़रीबन 45,000 करोड़ रुपये का काला धन सामने आया है और तक़रीबन 2.9 करोड़ की नग़दी टैक्स जाँच के दायरे में आयी है। इससे बेनामी सम्पत्ति पर भी हमला हुआ है। एस. गुरुमूर्ति यह बताते हैं कि ख़ुफ़िया एजेंसियों के मुताबिक़ विमुद्रीकरण के बाद हवाला से संबंधित लेन-देन में 50 प्रतिशत की गिरावट आयी है। हवाला के लिए उपयोग की जाने वाली 2.24 लाख काग़ज़ी कंपनियों के बारे में सूचना उजागर हुई है।[17]

लेकिन अरुण कुमार और प्रभात पटनायक जैसे बहुत से अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि इसके लागू होने के एक वर्ष बाद भी अर्थव्यवस्था पर इसका नकारात्मक प्रभाव क़ायम है, और जीडीपी वृद्धि-दर में आयी कमी के पीछे इसकी मुख्य भूमिका है।[18] अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्रों पर

[13] अंग्रेज़ी में प्रकाशित होने वाले पाक्षिक *फ्रंटलाइन* ने विमुद्रीकरण के एक वर्ष बाद प्रकाशित अपने अंक की आमुख कथा में किसानों, व्यापारियों, मज़दूरों आदि पर नोटबंदी के दूरगामी प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है. नोटबंदी को लेकर कई तरह के षड्यंत्र सिद्धांत भी प्रस्तुत किये जाते रहे हैं. मसलन, सी.राममनोहर रेड्डी अपनी पुस्तक में नोटबंदी के बारे में दो षड्यंत्र सिद्धांतों का उल्लेख भी करते हैं, हालाँकि न तो वे इन्हें स्वीकार करते हैं और न ही इनसे इंकार करते हैं. पहला यह तर्क दिया जाता रहा है कि विमुद्रीकरण कुछ डिजिटल कंपनियों और अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का षड्यंत्र है. रेड्डी के अनुसार, एक डिजिटल कम्पनी ने 9 नवम्बर, 2016 को अख़बारों में पूरे पृष्ठ का विज्ञापन दिया था. इसका निहितार्थ यह है कि उसे इस बात की पहले से जानकारी थी कि लेन-देन के लिए लोग उसके प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग करेंगे. देखें, सी. राममनोहर रेड्डी (2017) : 4; निश्चित रूप से, ऐसी कम्पनियों और ई-कॉमर्स कम्पनियों का विमुद्रीकरण के बाद काफ़ी अच्छा प्रदर्शन रहा है. सरकार द्वारा विमुद्रीकरण के पक्ष में काले धन से शुरू करके 'नग़दरहित अर्थव्यवस्था' की बात कही जाती रही है, ऐसे में यह प्रश्न सामने आता है कि क्या यह षड्यंत्र सिद्धांत सही हो सकता है? रेड्डी ने एक अन्य षड्यंत्र सिद्धांत का भी वर्णन किया है जिसके मुताबिक़ उत्तर प्रदेश के चुनावों को ध्यान में रखकर विमुद्रीकरण का क़दम उठाया गया, देखें सी. राममनोहर रेड्डी (2017) : 10; दरअसल, इसमें 'कम नग़दी' (लेस कैश) अर्थव्यवस्था के विविध पहलुओं का भी विवरण दिया गया है. काले धन के बारे में अरुण कुमार की पुस्तक भी देखी जा सकती है. अरुण कुमार (2007).

[14] एस. गुरुमूर्ति (2017).

[15] वही.

[16] सुरजीत भल्ला (2017).

[17] एस.गुरुमूर्ति (2017).

[18] मसलन, देखें अरुण कुमार (2017ख); जाह्नवी सेन (2017).

नोटबंदी का लगातार बुरा प्रभाव पड़ा है। वृद्धि-दर कम होने के पीछे अनौपचारिक और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का नकारात्मक प्रभाव शामिल है। नग़दी की कमी के कारण निवेश और उपभोग में जो कमी आयी है, उससे उबरा जा सकता है, लेकिन जो नौकरियाँ ख़त्म हुई हैं, वे हमेशा के लिए ख़त्म हो गयीं।

विमुद्रीकरण के प्रभावों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि नवम्बर, 2016 और जनवरी 2017 के बीच सर्वेक्षण किया जाए। बाद में किये गये सर्वेक्षण से उस दौर में हुए बदलावों को नहीं समझा जा सकता है। इसलिए सरकार की सांख्यिकी कभी यह प्रदर्शित नहीं कर सकती है कि उस दौर में क्या हुआ। सौभाग्य की बात यह है कि नोटबंदी के गहन प्रभाव के उस दौर में बहुत से निजी सर्वे किये गये थे, और उसमें अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र में 60-80 प्रतिशत तक की गिरावट होने और बेरोज़गारी बढ़ने की बात की गयी। यह काफ़ी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कुल श्रमिकों का 93 प्रतिशत इस क्षेत्र से संबंधित है। इन सबके चलते माँग में अत्यधिक गिरावट आयी है। हालाँकि सरकारी सर्वेक्षणों का कोई विकल्प नहीं है, किंतु निजी सर्वेक्षणों से उपलब्ध आँकड़े यह बताते हैं कि नोटबंदी के आरम्भिक चरण के सर्वेक्षण में अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर ने नकारात्मक रूप धारण कर लिया। यह जनवरी 2017 में कुछ हद तक उबरा, किंतु जून के बाद जब जीएसटी से संबंधित प्रभाव सामने आने लगें तो इसमें फिर से गिरावट आने लगी।[19] अजीत रानाडे ने भी इस बात पर बल दिया है कि नोटबंदी का लगातार बुरा प्रभाव पड़ा है। वृद्धि-दर कम होने के पीछे अनौपचारिक और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का नकारात्मक प्रभाव शामिल है। नग़दी की कमी के कारण निवेश और उपभोग में जो कमी आयी है, उससे उबरा जा सकता है, लेकिन जो नौकरियाँ ख़त्म हुई हैं, वे हमेशा के लिए ख़त्म हो गयीं। इसी तरह, प्रधानमंत्री ने नोटबंदी की घोषणा करते हुए इसे काले धन को ख़त्म करने की मुहिम से जोड़ा था। किंतु रिजर्व बैंक ऑफ़ इण्डिया के आँकड़ों के अनुसार 99 प्रतिशत विमुद्रित नोट बैंक के पास वापस आ चुके हैं, ऐसे में यह कहना ग़लत नहीं होगा कि विमुद्रीकरण से काले धन के ख़त्म होने की उम्मीद करना पूरी तरह निरर्थक था।[20]

बहरहाल, सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सरकार अभी भी नोटबंदी को एक ग़लत या हड़बड़ी में लिया गया निर्णय मानने के लिए तैयार नहीं है। यद्यपि देश के बड़े अर्थशास्त्री और पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने इसे 'खुली लूट' की संज्ञा दी, किंतु सरकार के मंत्री इसे भ्रष्टाचार और काले धन के ख़िलाफ़ संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ग़ौरतलब है कि नोटबंदी के लागू होने के बाद मनमोहन सिंह ने इसे 'भयंकर भूल' और 'क़ानूनी लूट' की संज्ञा दी थी।[21] नोटबंदी के एक वर्ष पूरा होने के एक दिन पहले गुजरात में व्यापारियों को सम्बोधित करते हुए मनमोहन सिंह ने यह कहा कि 'नोटबंदी सिर्फ़ चुनावी लाभ लेने का साधन साबित हुआ है, जबकि इसमें वास्तविक दोषी बच गये हैं। मैं इस बात को दोहराना चाहता हूँ कि एक संगठित लूट और क़ानूनी डाका था। नोटबंदी हमारी अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र के लिए काला दिवस है।' दूसरी ओर, वित्त मंत्री अरुण जेटली ने इस बात पर बल

---

[19] अरुण कुमार (2017ख).

[20] जाह्नवी सेन (2016); (2017).

[21] मनमोहन सिंह (2016).

दिया कि 'भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में 8 नवम्बर 2016 को एक युगांतकारी क्षण के रूप में याद किया जाएगा। एक सम्पूर्ण विश्लेषण करने पर यह कहना ग़लत नहीं होगा कि देश एक ज़्यादा साफ़ पारदर्शी और ईमानदार वित्तीय व्यवस्था की ओर बढ़ा है। यह मुमकिन है कि अभी भी कुछ लोगों को इसका लाभ न दिख रहा हो।'[22]

2. जीएसटी का क्रियान्वयन

गुड्स ऐंड सर्विसेज टैक्स (जीएसटी) एक अप्रत्यक्ष कर है, जिसे भारत में 1 जुलाई, 2017 से लागू किया गया है। इसे पूरे भारत में लागू किया गया है और इसने केंद्र और राज्य सरकार द्वारा लगाए जाने वाले बहुत से अलग-अलग करों का स्थान लिया है। संविधान के 122वें संशोधन बिल के पारित होने के बाद इसे संविधान के 101 वें संशोधन के रूप में शामिल किया गया है। जीएसटी को प्रशासित करने के लिए एक जीएसटी कौंसिल की स्थापना की गयी है, जिसके अध्यक्ष भारत के वित्त मंत्री होते हैं। जीएसटी के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं पर लगने वाले करों की दरों को पाँच स्तरों में बाँटा गया है— 0 प्रतिशत, 5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 18 प्रतिशत और 28 प्रतिशत।

जीएसटी के समर्थक यह मानते हैं कि यह एक दीर्घकालिक संरचनात्मक सुधार है और इसे लागू करने का फ़ैसला मोदी सरकार का एक बहुत बड़ा सकारात्मक फ़ैसला है, जिसका नतीजा आने वाले वर्षों में सामने आएगा।[23] लेकिन यह भी सच है कि जीएसटी को लागू करने की प्रक्रिया ने कई तरह की समस्याएँ पैदा की हैं। आरम्भिक स्तर पर इसे जिस तरह लागू किया गया उससे कई वस्तुएँ पहले से ज़्यादा महँगी हो गयीं। छोटे व्यापारियों के लिए इससे जुड़ी प्रक्रियात्मक पहलू अत्यंत कठिन साबित हुए। इन सबके चलते देश के कई छोटे-बड़े व्यापारिक क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधियों में धीमापन आया।

द इण्डियन एक्सप्रेस में अनिल शशि ने यह बताया है कि जीएसटी के कारण सूरत, भिवाड़ी, और इचालकारांज जैसे स्थानों पर छोटे उद्यमियों को काफ़ी नुक़सान का सामना करना पड़ा है। सूरत में जीएसटी संघर्ष समिति के अध्यक्ष ताराचंद कसात के अनुसार, जुलाई में जीएसटी लागू हो जाने के बाद फ़िलामेंट यार्न और मनुष्यों द्वारा बनाए जा रहे फ़ाइबर के उत्पादन करने वालों को सूरत में हर रोज़ 1.25 करोड़ का नुक़सान हो रहा है।[24] जीएसटी का छोटे व्यापारियों और लघु उद्योगों को चलाने वालों ने भी ज़बरदस्त विरोध किया है। मसलन, व्यापारियों और छोटे उद्योग के सर्वोच्च भारतीय उद्योग व्यापार मण्डल के अध्यक्ष और चार बार से उत्तर प्रदेश के बिल्हौर से भाजपा के संसद सदस्य श्याम बिहारी बैजनाथ मिश्रा ने जीएसटी के छोटे व्यापारियों पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण इसकी आलोचना की। उनके अनुसार, 'जब जीएसटी को लागू किया गया तो मोदी जी ने चार बातों का वायदा किया। पहला,पूरे देश में टैक्स की एक जैसी संरचना होगी। दूसरा, यह भ्रष्टाचार दूर करेगा तथा काले धन की उत्पत्ति और संचरण पर रोक लगाएगा। तीसरा, अधिकारियों द्वारा व्यापारियों की प्रताड़ना बंद होगी। चौथा, देश में सभी व्यापार का दस्तावेज़ीकरण होगा और उसके लिए रसीद दी जाएगी। लेकिन इनमें से कोई भी वायदा पूरा नहीं हुआ।'[25] उनका मानना है कि इसके बजाय व्यापारियों की परेशानी काफ़ी बढ़ गयी है।

---

[22] देखें, महेश लांगा (2017).
[23] सुरजीत भल्ला (2017).
[24] अनिल शशि (2017).
[25] वेंकटेश रामाकृष्णन (2017).

जीएसटी का छोटे व्यापारियों ने कई स्थानों पर विरोध किया। हिमाचल प्रदेश और गुजरात में होने वाले विधानसभा चुनावों के दौरान कांग्रेस ने इसे सबसे प्रमुख चुनावी मुद्दे के रूप में उठाया, विशेष रूप से कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गाँधी द्वारा गुजरात में अपनी नवसृजन यात्रा के दौरान इस मुद्दे को ज़ोर-शोर से उठाया गया। उन्होंने मुख्य रूप से जीएसटी के लागू करने के तरीक़े की तीखी आलोचना की। समाचार माध्यमों में यह ख़बर भी आयी कि जीएसटी से परेशान गुजरात के व्यापारी वर्ग में उन्हें अच्छा-ख़ासा समर्थन मिल रहा है। सरकार को भी यह अहसास होने लगा कि व्यापारी वर्ग जीएसटी से नाखुश है। इसलिए जहाँ जीएसटी लागू होने के समय सरकारी माध्यमों ने इसका पूरा श्रेय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को दिया, वहीं नरेन्द्र मोदी ने 16 अक्तूबर को गुजरात के गाँधीनगर में अपनी पार्टी की बड़ी रैली 'गुजरात गौरव महासम्मेलन' में यह घोषणा की कि 'कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों ने जीएसटी लाने का फ़ैसला किया। सभी इस निर्णय में भागीदार हैं।'[26]

उच्च जीडीपी वृद्धि-दर रखने के बावजूद तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, और राजस्थान जैसे राज्यों में सत्ताधारी दलों को हार का सामना करना पड़ा है। इसी तरह, कम जीडीपी दर वाले ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में सत्ताधारी दलों को फिर से जीत मिली है, जबकि उत्तर प्रदेश और पंजाब जैसे कम जीडीपी वृद्धि-दर वाले राज्यों में सत्ताधारी दल को हार का सामना करना पड़ा है। स्पष्टतः इस बारे में तस्वीर काफ़ी धुँधली और भ्रामक है।

छोटे और मध्यम व्यापारियों की नाराज़गी, विपक्षी दलों की लगातार आलोचनाओं, और गुजरात के आसन्न चुनावों के दबाव में सरकार ने जीएसटी की दरों में व्यापक संशोधन किया। 10 नवम्बर 2017 को गुवाहाटी में जीएसटी परिषद की बैठक में 200 से ज़्यादा उत्पादों के टैक्स दर को कम करने का फ़ैसला किया गया। इसके पहले भी परिषद 27 वस्तुओं के टैक्स दरों में कटौती कर चुकी थी। उल्लेखनीय है कि तक़रीबन 1,200 उत्पादों और सेवाओं टैक्स की पाँच दरों — अर्थात् 0 प्रतिशत, 5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 18 प्रतिशत और 28 प्रतिशत में बाँटा गया है। जहाँ जीएसटी लागू होते वक़्त 250 वस्तुएँ सबसे ज़्यादा टैक्स दर के खाते में दर्ज थीं, वहीं अब ऐसी वस्तुओं की संख्या मात्र 50 रह गयी। इसी तरह, जीएसटी लागू होने के बाद से अभी तक छोटे व्यापार के संघटन योजना (कम्पोजिशन स्कीम) में भी दो बार विस्तार किया जा चुका है। पहली बार अक्तूबर में इसके स्तर को 75 लाख से बढ़ाकर 1 करोड़ किया गया, और 10 नवम्बर को इसे बढ़ाकर 1.5 करोड़ कर दिया गया।[27]

यद्यपि जीएसटी को देश का सबसे बड़ा टैक्स सुधार माना जाता है किंतु इसको लागू करने के तरीक़े ने छोटे व्यापारियों और लघु स्तर पर उद्योग चलाने वालों के लिए कई तरह की समस्याओं को जन्म दिया, जिसका कुल व्यापार और असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों पर भी काफ़ी नकारात्मक प्रभाव पड़ा। हालाँकि यह प्रभाव कितना गहरा है, इस बारे में अभी व्यवस्थित अध्ययन किया जाना बाक़ी है। जीएसटी पर सरकार के समर्थकों की ओर से अक्सर यह दावा किया जाता है कि यह दूरगामी संरचनात्मक सुधार है। किंतु इसमें कोई दो राय नहीं है कि इसने देश के छोटे और बड़े बाज़ारों में व्यापारिक गतिविधियों को कुछ हद तक धीमा किया है।

---

[26] वही.

[27] *द हिंदू* ने अपने सम्पादकीय में जीएसटी की दरों में हुए इन बदलावों का स्वागत किया, किंतु इसने यह भी स्पष्ट किया कि 'एक टैक्स व्यवस्था वाली जीएसटी को मतदाताओं को ख़ुश करने के साधन के रूप में विकृत नहीं करना चाहिए'. देखें, *द हिंदू*, संपादकीय, 13 नवम्बर, 2017.

नोटबंदी और जीएसटी संबंधी विविध पहलुओं के परीक्षण के बाद कुछ बातें स्पष्ट रूप से कही जा सकती हैं :

पहला, सरकार के समर्थक यह मानते हैं कि जीएसटी, नोटबंदी और डिजिटल पेमेंट भारत की अर्थव्यवस्था को औपचारिक रूप देने वाले अत्यंत प्रभावशाली क़दम हैं। कर-जाल और अनौपचारिक क्षेत्र में होने वाला आर्थिक लेन-देन अब औपचारिक क्षेत्र का भाग बन गया है। दीर्घकालिक रूप से औपचारिकीकरण (फ़ॉर्मलाइजेशन) का अर्थ है (क) कर संग्रहण में वृद्धि होगी और राज्य को ज़्यादा संसाधन प्राप्त होंगे; (ख) अर्थव्यवस्था में दरार या टकराव में कमी आएगी और जीडीपी में वृद्धि होगी; और (ग) लेन-देन के रेकार्ड के डिजिटल हो जाने के बाद नागरिक ज़्यादा प्रभावकारी तरीक़े से क्रेडिट स्थापित कर पाएँगे। कुल मिलाकर 2014 के बाद मोदी सरकार द्वारा आरम्भ किया गया संरचनात्मक सुधार, सुधारों की तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, पहली पीढ़ी का सुधार 1991 में और तीसरी पीढ़ी का सुधार 1999-2004 में राजग सरकार के दौरान हुआ। पहले की दो पीढ़ियों के सुधारों के विपरीत तीसरी पीढ़ी का सुधार सभी भारतीयों के लिए अच्छे जीवन और इक्कीसवीं सदी के विकसित और परिष्कृत अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करता है।[28] दूसरा, आर्थिक संवृद्धि की दर कम होने के दीर्घकालिक कारणों के बारे में अलग-अलग विश्लेषणों को प्रस्तुत करने के बावजूद बहुत से टीकाकारों ने यह तर्क दिया है कि भले ही अर्थव्यवस्था के संकट की बुनियाद पहले (संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) के दौर में रखी जा चुकी थी, किंतु विमुद्रीकरण और जीएसटी ने उसे बढ़ावा देने का ही कार्य किया है।[29] तीसरा, इस बारे में किसी व्यवस्थित अध्ययन का अभाव है कि नोटबंदी या जीएसटी से असंगठित क्षेत्र के छोटे श्रमिकों या उत्पादकों को किस सीमा तक नुक़सान का सामना करना पड़ा है। लेकिन विभिन्न टीकाकार यह मानते हैं कि इस क्षेत्र में काम करने वाले छोटे व्यापारियों, उत्पादकों और श्रमिकों को विमुद्रीकरण और जीएसटी से गम्भीर नुक़सान का सामना करना पड़ा है, और इससे अर्थव्यवस्था को मंदी का सामना करना पड़ा है। चौथा, नोटबंदी के फ़ायदे से संबंधित सरकार और इसके समर्थक अर्थशास्त्रियों के विभिन्न दावों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि सरकार ने इस संदर्भ में जो मुख्य लक्ष्य बताए थे, उन लक्ष्यों के संदर्भ में यह क़दम काफ़ी हद तक विफ़ल रहा है। पाँचवाँ, ऊपर के वर्णन से यह भी स्पष्ट है कि सरकार ने जीएसटी के मामले में ज़्यादा लचीला रवैया अपनाया है, जिसके लिए काफ़ी हद तक चुनावी राजनीति की बाध्यता ज़िम्मेदार है।

IV
चुनावी राजनीति पर आर्थिक 'संकट' का प्रभाव

भारतीय चुनाव अध्ययन में यह एक रोचक और चुनौतीपूर्ण प्रश्न रहा है कि क्या आम मतदाता मतदान करते समय देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर मतदान करता है? जाति, धर्म और अन्य स्थानीय मुद्दों से प्रभावित होकर मतदान करने वाले मतदाता को क्या इससे फ़र्क़ पड़ता है कि देश की आर्थिक स्थिति कैसी है, या जीडीपी के वृद्धि-दर कितनी रही है? दूसरे शब्दों में, क्या यह कहा जा सकता है कि जीडीपी और अर्थव्यवस्था के अन्य पहलुओं को न सँभालने की स्थिति में 2019 का चुनाव भाजपा के लिए ख़तरनाक साबित हो सकता है?

भारत के वरिष्ठ राजनीतिक पर्यवेक्षकों का यह मानना है कि पिछली छह तिमाहियों में भारत के

---

[28] जयंत सिन्हा (2017).

[29] मसलन, देखें, यशवंत सिन्हा (2017); दीपक नैयर (2017).

आर्थिक वृद्धि-दर की धीमी गति ने पहले बिल्कुल स्पष्ट लगने वाले 2019 के आम चुनावों के नतीजों को संदिग्ध कर दिया है। राजनीतिक-विज्ञान के सिद्धांतकार और सार्वजनिक टीकाकार यह मानते हैं कि जीडीपी और चुनावी नतीजों के बीच एक सहज संबंध है, इसलिए वे यह मानने लगे हैं कि अब चुनावी माहौल धुँधला होता जा रहा है। पिछले दशक में गुजरात में नरेन्द्र मोदी, बिहार में नीतीश कुमार और मध्य प्रदेश में शिवराज सिंह चौहान की जीत को अमूमन इस बात के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च जीडीपी वृद्धि-दर शासन कर रहे दल को चुनावी जीत दिलाने में मददगार साबित होती है। राष्ट्रीय चुनावों में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) के शासन के दौरान 1999-2004 के बीच औसत 5.8 प्रतिशत की जीडीपी वृद्धि-दर रही और उसे सत्ता से हाथ धोना पड़ा। वहीं संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन-1 (2004-9) ने 8 प्रतिशत जीडीपी वृद्धि-दर थी और उसकी सत्ता में वापसी हुई। यूपीए-2 के शासन काल में औसत जीडीपी वृद्धि-दर गिरकर 7 प्रतिशत हो गयी और 2014 में हुए चुनावों में इसे हार का सामना करना पड़ा। इसलिए इस बात पर विवाद बढ़ा है कि क्या अर्थव्यवस्था की मंदी से भारतीय जनता पार्टी को 2019 का आम चुनाव जीतने में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा? हालाँकि सैद्धांतिक स्तर पर यह माना जाता है कि जीडीपी की वृद्धि-दर और चुनावी नतीजों में संबंध होता है, लेकिन क्या भारत में अनुभवसिद्ध प्रमाण इस तरह की व्याख्या से सहमति जताते हैं? क्या भारतीय मतदाता शासक दल को उनके जीडीपी प्रदर्शन के आधार पर पुरस्कृत करते हैं या सज़ा देते हैं?

भारत में चुनाव नतीजे अत्यधिक जटिल होते हैं और उनकी सरल तरीक़े से व्याख्या नहीं की जा सकती है। भारत में किसी भी चुनावी विश्लेषण के सामने मुख्य चुनौती यह है कि यहाँ राजनीतिक दलों के बीच चुनाव पूर्व गठजोड़ बनते और बिगड़ते रहते हैं, इसलिए विभिन्न चुनावों के बीच तुलना करना अत्यंत कठिन हो जाता है। भारत का 'फ़र्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम' विश्लेषण को और भी ज़्यादा जटिल बना देता है क्योंकि यहाँ राजनीतिक दल शानदार सुशासन के बजाय छोटे चुनाव पूर्व गठजोड़ों की मदद से चुनावों में जीत हासिल कर सकते हैं। प्रवीण चक्रवर्ती के मुताबिक़ पिछले एक दशक में गुजरात, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों उच्च जीडीपी दर वाले शासक दलों की सत्ता वापसी हुई है, किंतु यह भी एक तथ्य है कि उच्च जीडीपी वृद्धि-दर रखने के बावजूद तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, और राजस्थान जैसे राज्यों में सत्ताधारी दलों को हार का सामना करना पड़ा है। इसी तरह, कम जीडीपी दर वाले ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में सत्ताधारी दलों को फिर से जीत मिली है, जबकि उत्तर प्रदेश और पंजाब जैसे कम जीडीपी वृद्धि-दर वाले राज्यों में सत्ताधारी दल को हार का सामना करना पड़ा है। स्पष्टत: इस बारे में तस्वीर काफ़ी धुँधली और भ्रामक है। इसलिए जीडीपी और चुनावी जीत या हार के बीच मज़बूत संबंध का दावा करना सही प्रतीत नहीं होता है।

प्रवीण चक्रवर्ती ने 18 बड़े राज्यों में 2004 और 2016 के बीच हुए 36 राज्य चुनावों में (प्रत्येक राज्य में दो चुनाव) तक़रीबन 70 करोड़ मतदाताओं द्वारा अभिव्यक्त विकल्पों के आधार पर जीडीपी वृद्धि-दर के मतदाताओं की वरीयता पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया। अर्थात् यह जानने का प्रयास किया कि यदि राज्य सरकार ने अपने कार्यकाल में पिछले कार्यकाल की तुलना में ज़्यादा जीडीपी दर रखा है, तो क्या मत प्रतिशत के मामले में उसे इसका लाभ होता है?

इस विश्लेषण से यह बात उजागर होती है कि इस बात कि 90 प्रतिशत सम्भावना है कि औसत भारतीय मतदाता कम जीडीपी होने पर शासक दल को सजा देता है। दूसरे शब्दों में उच्च जीडीपी वृद्धि-दर होने पर एक सत्ताधारी दल द्वारा अपने मत खोने का अंदेशा 75 प्रतिशत है, लेकिन अर्थव्यवस्था में मंदी होने पर उसके मत खोने की सम्भावना 90 प्रतिशत हो जाती है। इसलिए उच्चतर जीडीपी वृद्धि-दर मतों में वृद्धि करने के लिए पर्याप्त स्थिति नहीं है, लेकिन यह आवश्यक है। दूसरी ओर,

अर्थव्यवस्था के धीमा होने पर सत्ताधारी दल के मतों में हमेशा ही कमी आती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि शासक दल पुनर्निर्वाचित नहीं हो सकता है। स्पष्टत: आर्थिक मुद्दों के अलावा अन्य कारक सत्ताधारी दल को फिर से चुनाव जीतने में मदद कर सकते हैं। अर्थात् जीडीपी और चुनावी नतीजों के बीच संबंधों की सरल तरीक़े से व्याख्या नहीं की जा सकती है। चक्रवर्ती के अनुसार कोई यह तर्क दे सकता है कि कुल जीडीपी की बजाय खेती के जीडीपी की वृद्धि मतदाताओं के मत व्यवहार को प्रभावित करती है, किंतु खेतिहर जीडीपी वृद्धि और मतदाताओं के व्यवहार में कोई स्पष्ट संबंध नहीं है।[30]

कई अन्य अध्ययनों से यह बात सामने आती है कि लोग भले ही चुनावों के मतदान के दौरान जीडीपी की वृद्धि-दर को एकमात्र कसौटी न मानते हों, किंतु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि चुनावी राजनीति में अर्थव्यवस्था से जुड़े मसले महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में दिसम्बर 2017 के पहले लोकनीति-सीएसडीएस द्वारा गुजरात में कराए गये दो चुनाव-पूर्व सर्वेक्षणों का उल्लेख किया जा सकता है। पहला सर्वेक्षण अगस्त के आख़िरी भाग में करवाया गया था, जिसके मुताबिक़ मतों के लिहाज़ से भाजपा कांग्रेस से 30 प्रतिशत आगे थी। किंतु अक्तूबर के आख़िरी सप्ताह में कराए गये सर्वेक्षण से यह बात सामने आयी कि अब भाजपा कांग्रेस से सिर्फ़ 6 प्रतिशत मतों से ही आगे रह गयी है। संजय कुमार और श्रेयस सरदेसाई ने ढाई महीने के अंतराल में मतदाताओं के रुझान में हुए इस बदलाव के लिए अन्य कारकों के अतिरिक्त नोटबंदी और जीएसटी को ध्यान में रखकर कांग्रेस द्वारा किये जा रहे प्रचार को भी ज़िम्मेदार माना है।[31]

भारत की चुनावी राजनीति में धर्म, जाति, उम्मीदवारों के प्रदर्शन जैसे कई मुद्दे हावी रहते हैं। राजनीतिक दल भी अमूमन इन्हीं मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अर्थव्यवस्था के बड़े आँकड़े आम मतदाताओं को ज़्यादा प्रभावित नहीं करते हैं। किंतु जब ये आँकड़े लोगों के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने लगते हैं, और जब विपक्षी दल इन्हें व्यवस्थित और ज़ोर-शोर से चुनावी मुद्दा बनाते हैं तो निश्चित रूप से आर्थिक मसले चुनावों में महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। महँगाई और बेरोज़गारी जैसे मुद्दे आम जनता के जीवन से बुनियादी रूप से जुड़े हुए हैं, किंतु यह मुमकिन है कि अस्मिता या साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण जैसे मुद्दों को उठाकर इन्हें नेपथ्य में कर दिया जाए। इसलिए आर्थिक मुद्दों को चुनावी राजनीति के केंद्र में आना विपक्षी दलों की सक्रियता और सतत प्रयासों से भी जुड़ा हुआ है।

V
निष्कर्ष

भारत के अर्थव्यवस्था की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है और इसके लिए संप्रग सरकार से चली आ रही दीर्घकालिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ मोदी सरकार की नीतियाँ भी ज़िम्मेदार हैं। एक ओर, मौजूदा सरकार ने पहले से चली आ रही समस्याओं को दूर करने के लिए गम्भीर प्रयास नहीं किया, वहीं दूसरी ओर हड़बड़ी में लिए गये नोटबंदी के फ़ैसले और जीएसटी के बेतरतीब क्रियान्वयन ने अर्थव्यवस्था की समस्या को ज़्यादा गहरा बनाया। विपक्षी दलों ने नोटबंदी और जीएसटी के बेतरतीब क्रियान्वयन को चुनावी मुद्दा बनाने का प्रयास किया है, लेकिन वे इसके ख़िलाफ़ ज़मीनी स्तर पर कोई सशक्त आंदोलन खड़ा नहीं कर पाए हैं। जहाँ सरकार ने चुनावी राजनीति के दबाव में जीएसटी में कई बदलाव किये हैं, वहीं नोटबंदी को उसने भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ नैतिक संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है।

---

[30] प्रवीण चक्रवर्ती (2017).

[31] संजय कुमार और श्रेयस सरदेसाई (2017).

सरकार ने अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को आर्थिक सहायता प्रदान करने सहित कई महत्त्वपूर्ण क़दम उठाए। कई अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने इस तरह की पहल को सकारात्मक रूप से लिया है। मसलन, 31 अक्तूबर को विश्व बैंक ने व्यापार करने में अनुकूल वातावरण वाले देशों में भारत की रैंकिंग को सुधारते हुए, उसे पहले की तुलना में 30 स्थान ऊपर रखा है।[32] इसी तरह, ग्लोबल क्रेडिट रैंकिंग एजेंसी मूडी ने भारत की क्रेडिट रैंकिंग में पिछले 14 वर्षों में पहली बार सुधार किया। इसने यह उम्मीद जताई कि भारत के 'आर्थिक और संस्थात्मक सुधारों में लगातार प्रगति होती रहेगी और समय के साथ इससे भारत की उच्च वृद्धि-दर की सम्भावना में बढ़ोतरी होगी।'[33] इसके अलावा जुलाई-दिसम्बर की तिमाही में जीडीपी की वृद्धि दर में भी थोड़ा सुधार किया गया, और यह बढ़ कर 6.3 प्रतिशत हो गयी।

कुल मिलाकर मौजूदा आर्थिक 'संकट' की स्थिति का आने वाले समय में भारत की चुनावी राजनीति पर प्रभाव इस बात पर निर्भर करेगा कि सरकार किस सीमा तक आर्थिक स्थिति को बेहतर बना पाती है, या फिर विपक्षी दल किस सीमा तक इसे एक सशक्त राजनीतिक मुद्दा बना पाते हैं। यह भी हो सकता है कि आर्थिक मोर्चे पर बेहतर प्रदर्शन न कर पाने और विपक्ष द्वारा इसे मज़बूत चुनावी मुद्दा न बना पाने की स्थिति में भारतीय चुनावी राजनीति धार्मिक ध्रुवीकरण, कट्टर राष्ट्रवाद जैसे मुद्दों पर आधारित रणक्षेत्र बन जाए।

संदर्भ

अजीत रानाडे (2017क), 'इकॉनॉमी आउटलुक स्टिल क्लॉउडी', *द हिंदू*, 4 सितम्बर.

-------- (2017ख), द स्टिमुलस ऐंड ऑफ़्टर', *द हिंदू*, 2 नवम्बर, 2017.

अनिल शशि (2017), 'फ्रॉम टेक्सटाइल टू आईटी : वेब ऑफ़ जॉब लूजेज़ हिट्स न्यू ऐंड ओल्ड इकॉनॉमी', *द इण्डियन एक्सप्रेस,* 4 अक्टूबर 2017, वेब पता : http://indianexpress.com/article/business/economy/from-textiles-to-tech-wave-of-job-losses-hits-new-and-old-economy-4871829/)

अरुण कुमार (2007). *अंडरस्टैंडिंग द ब्लैक इकॉनॉमी ऐंड ब्लैक मनी इन इण्डिया : ऐन इंक्वायरी इनटू कॉजेज़, कंसीक्वेंसेज ऐंड रेमीडीज,* एल्फ़ा पब्लिकेशंस, दिल्ली.

अरुण कुमार (2017क), 'द नट्स ऐंड वोल्ट्स ऑफ़ डिमॉनेटाइजेशन ऐंड इण्डियाज़ ब्लैक इकॉनॉमी' *द वायर,* 14 जून. (वेब पता : https://thewire.in/147302/nuts-bolts-demonetisation-indias-black-economy/)

अरुण कुमार (2017ख), 'इण्डियाज़ ट्रबलिंग ऐंड ऑफ़िशियल ग्रोथ नम्बर्स ऑर ओनली दी टिप ऑफ़ द आइसबर्ग', द *वायर,* 3.10.207 (वेब पता : https://thewire.in/183865/indias-troubling-official-growth-numbers-tip-iceberg/) एस. गुरुमूर्ति, (2017), 'द ग्रेट रिसेट, अ ईयर लेटर', *द हिंदू*, 9 नवम्बर.

जयंत सिन्हा, 'न्यू इकॉनॉमी फ़ॉर न्यू इण्डिया : फ़ण्डामेंटल चेंजेज पुट इन प्लेस फ़ॉर ऐन ओपेन, ट्रान्सपैरेंट, कॉम्पिटीटिव ऐंड इन्नोवेशन-ड्रिवेन इकॉनॉमी' 28 सितम्बर 2017, ब्लॉग *टाइम्स ऑफ़ इण्डिया,* वेब पता : https://blogs.timesofindia.indiatimes.com/toi-edit-page/new-economy-for-new-india-fundamental-changes-put-in-place-for-an-open-transparent-competitive-and-innovation-driven-economy/

जाह्नवी सेन (2016), 'डिसीज़न टू डिमोनेटाइज़ करेंसी शोज़ दैट दे डॉन्ट अण्डरस्टैंड कैपिटलिज़म : प्रभात पटनायक' *द वायर,* 12 नवम्बर, वेब पता : https://thewire.in/79419/demonitesation-interview-prabhat-patnaik/

------- (2017), 'डिमॉनेटाइज़ेशन ब्रोक द इनफ़ॉर्मल इकॉनॉमी, हैड नो पॉज़िटिव इम्पैक्ट', प्रभात पटनायक, द *वायर,* 16 नवम्बर, वेब पता : https://thewire.in/197366/demonetisation-broke-informal-economy-no-positive-impact-prabhat-patnaik/— 'द मैक्रोइकॉनॉमिक मैलिस : द मोदी गवर्नमेंट हैज़ लिटिल टू शो

---

[32] विवेक देबरॉय (2017).

[33] 'इकॉनॉमी गेट्स मूडी 'ज़ थम्स अप', *द हिंदू*, 18 नवम्बर 2017 : 1.

ऑफ़्टर थ्री इयर्स ऑफ़ ग्रैंड अनाउंसमेंट्स', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* सितम्बर 30, 2017, 52(30).

दीपक नैयर (2017) 'व्हाई द इकॉनॉमिक स्लोडाउन, ऐंड हाउ टू फ़िक्स इट?, *लाइव मिंट,* 13 अक्टूबर, वेब पता : http://www.livemint.com/Opinion/6Lj1pRwzYqCIRJzKDMDrfN/Why-the-economic-slowdown-and-how-to-fix-it.html.

प्रवीण चक्रवर्ती (2017), 'विल ऐन इकॉनॉमिक स्लोडाउन हैम्पर नरेन्द्र मोदीज़ री–इलेक्टेड बिड?', *लाइवमिंट,* 22 अक्टूबर, वेब पता : http://www.livemint.com/Opinion/EgnYVaWVPsQAxNsAwNpQiK/Will-an-economic-slowdown-hamper-Narendra-Modis-reelection.html.

भारतीय जनता पार्टी (2014), *इलेक्शन मैनिफ़ेस्टो 2014,* दिल्ली.

मनमोहन सिंह (2016), 'मेकिंग अ मॉन्यूमेंटल ट्रेजिडी', *द हिंदू,* 9 दिसम्बर .

महेश लिंगा (2017), 'नवम्बर 8 वॉज़ अ ब्लैक डे : मनमोहन', *द हिंदू,* 8 नवम्बर.

यशवंत सिन्हा, 'आई नीड टू स्पीक अप नाउ', *द इण्डियन एक्सप्रेस,* दिल्ली 27 सितम्बर, 2017.

विवेक देबरॉय (2017), 'व्हेयर क्रेडिट इज़ ड्यु', *द इण्डियन एक्सप्रेस,* 2 नवम्बर.

वेंकटेश रामाकृष्णन (2017), 'स्ट्रॉस इन द विंड', *फ्रंटलाइन,* 24 नवम्बर, 2017.

सलमान अनीस सोज (2017), 'इनफ़ॉर्मल इज़ नॉर्मल', *द हिंदू,* 9 नवम्बर, 2017.

संजय कुमार और श्रेयस सरदेसाई (2017), 'गेम ऑन इन गुजरात', *द हिंदू,* 14 नवम्बर.

सी. राममनोहर रेड्डी (2017), *डिमॉनेटाइज़ेशन ऐंड ब्लैक मनी?* (विद अ फ़ोरवर्ड बाई वाई. वी. रेड्डी), ऑरियंट ब्लैकस्वॉन, दिल्ली.

सुबीर रॉय (2017), 'लाइट ऐट द ऐंड ऑफ़ एनपीए टनेल', बिजनेस लाइन, *द हिंदू,* 14 जून, 2017. वेब पता : http://www.thehindubusinessline.com/opinion/indias-npa-problem-and-rbi-measures/article9727061.ece.

सुरजीत भल्ला (2017), 'डेटा वर्सेज़ गॉसिप : व्हू शुड वीन?' *द इण्डियन एक्सप्रेस,* 30 सितम्बर.